E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University

अनुमान प्रमाण निरूपण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

किसी वस्तु या पदार्थ के परोक्ष ज्ञान को अनुमान कहते हैं। तर्कभाषाकार ने अनुमान को परिभाषित करते हुए लिखा है-"लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्। येन हि अनुमीयते तदनुमानम्। लिङ्गपरामर्शेन चानुमीयतेऽतो लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्"।

अर्थात् 'लिङ्गपरामर्श' को ही अनुमान कहते हैं क्योंकि जिससे 'अनुमिति' (अनु=पश्चात्, मितिः=प्रमितिः) की जाती है, उसे 'अनुमान' कहते हैं । 'लिंगपरामर्श' से अनुमिति की जाती है, इसलिये 'लिङ्गपरामर्श' को 'अनुमान' कहते हैं।

न्यायदर्शन के भाष्य रचयिता वात्स्यायन ने 'अनुमान' शब्द का अर्थ 'मितेन लिङ्गेन अर्थस्य अनु पश्चात् मानम्- अनुमानम् किया है। अर्थात् 'प्रत्यक्ष प्रमाण' से ज्ञात हुए 'लिङ्ग' द्वारा अर्थ के 'अनु' यानी पीछे से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को 'अनुमान' कहते हैं। 'अनुमिति' शब्द की उक्त व्युत्पत्ति या निरुक्ति के अनुसार 'अग्नि' का ज्ञान, 'धूम' ज्ञान के पश्चात् होने के कारण वह 'अनुमिति' रूप है अर्थात् 'अनुमान' प्रमाण के फलरूप 'अनुमिति' का ज्ञान उक्त व्युत्पत्ति से हो रहा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि 'लिङ्ग' किसे कहते हैं? और उसका 'परामर्श' क्या है ? इसको स्पष्ट करते हुए तर्कभाषाकार का कथन है-

"उच्यते व्याप्तिबलेनार्थगमकं लिङ्गम्। यथा धूमोऽग्नेर्लिङ्गम्। तथाहि यत्र धूमस्तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः। तस्यां गृहोतायामेव व्याप्तौ धूमोऽग्निं गमयति। अतो व्याप्तिबलेनाग्न्यनुमापकत्वाद् धूमोऽग्नेर्लिङ्गन्"। अर्थात् 'व्याप्ति' के आधार पर (बल पर) अर्थ का जो बोधक होता है, उसे 'लिङ्ग' कहते हैं। जैसे 'धूम', 'अग्नि' का लिङ्ग है। जहां 'धूम' होता है, वहाँ 'अग्नि' होती है-इस 'साहचर्यनियम' को 'व्याप्ति' कहते हैं। उस 'व्याप्ति' का निश्चयात्मकज्ञान होने पर ही 'धूम',

अग्नि का ज्ञान करा पाता है। अतः 'व्याप्ति' के बल पर 'अग्नि' का अनुमापक होने से 'धूम', को अग्नि का 'लिङ्ग' कहते हैं।

'लिङ्गपरामर्शः अनुमानम्' इस अनुमानलक्षण में 'लिङ्ग' और 'परामर्श' दो शब्द हैं। उनमें 'व्याप्ति के बल पर जो अर्थ का बोधक हो' उसे लिङ्ग कहते हैं। 'व्याप्तिबलेन अर्थगमकं लिङ्गम्'- यह 'लिङ्ग' का लक्षण है। उक्त लिङ्ग-लक्षण में एक 'व्याप्ति' शब्द भी आया है। अतः उसका भी ज्ञान होना आवश्यक है। व्याप्ति' शब्द का अर्थ है-'साहचर्यनियम'। 'यत्र-यत्र धूमः, तत्र तत्र वह्निः'- जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है- इस साहचर्य नियम को व्याप्ति शब्द से कहा गया है। इस व्याप्ति के बल पर अर्थ का जो बोधन करता है उसे 'लिङ्ग' कहते हैं। जैसे 'धूम', 'वह्नि' का लिङ्ग है क्योंकि पर्वत आदि स्थानों में धूम को देखकर 'यत्र-यत्र धूमो भवति, तत्र तत्र वह्निर्भवति' इस साहचर्यनियम अथवा 'व्याप्ति' के आधार पर 'अप्रत्यक्ष वह्नि' का ज्ञान होता है। इसलिये 'धूम' को 'वह्नि' का लिङ्ग कहते हैं। 'लिङ्ग' शब्द की व्युत्पत्ति (निरुक्ति) 'लीनम् अप्रत्यक्षम् अर्थं गमयति इति लिङ्गम्' होती है। इस लिङ्ग को 'हेतु' शब्द से भी कहते हैं। 'साहचर्य' का अर्थ है साथ-साथ रहना। 'धूमाग्नी सह चरतः इति सहचरौ तयोर्भावः साहचर्यम्'। इस प्रकार के साहचर्य का जो नियम है उसे 'व्याप्ति' कहते हैं। केवल साहचर्यमात्र को 'व्याप्ति नहीं कहते। साहचर्य के नियम का अर्थ है कि नियम से दोनों का साथ रहना। धूम कभी भी वह्नि के बिना नहीं रहता। इस प्रकार के नियम को 'व्याप्ति' या 'अविनाभावसम्बन्ध' भी कहते हैं।

जो पदार्थ किसी का 'अविनाभावी' है अर्थात् उसके बिना नहीं रहता है उसे 'व्याप्त' कहते हैं। जैसे 'धूम' कभी भी और कहीं भी 'अग्नि ' के बिना नहीं रहता है। इसलिये 'धूम', 'अग्नि' से व्याप्त है और 'अग्नि' व्यापक है। अग्नि की 'व्याप्ति' धूम में रहती है। जिसमें 'व्याप्ति' रहती है उसे 'व्याप्य' (व्याप्त) कहते हैं और जिसकी व्याप्ति रहती है उसे 'व्यापक' कहते हैं। इसलिये 'धूम' को अग्नि का 'व्याप्य' कहते हैं और 'अग्नि' को धूम का 'व्यापक' कहते हैं। 'धूम' का 'अग्नि' के साथ नियत साहचर्य है अर्थात् व्याप्ति है। तात्पर्य यह है कि जिस स्थान पर 'धूम' का जन्म होता है, उस स्थान पर 'अग्नि' अवश्य ही रहती है। 'धूम' में अग्नि के साथ ही रहने का जो नियम है, वही 'व्याप्ति' है। उस व्याप्ति का ज्ञान

(ग्रहण) होने पर ही 'धूम', अग्नि का गमक होता है अर्थात् धूम अग्नि का बोधक होता है। अतः व्याप्ति के बल से अग्नि का अनुमापक (गमक) होने के कारण 'धूम' को अग्नि का 'लिङ्ग कहते हैं ।

'परामर्श' को स्पष्ट करते हुए तर्कभाषाकार कहते हैं-"तस्य तृतीयं ज्ञानं परामर्शः। तथाहि प्रथमं तावन्महानसादौ भूयो भूयो धूमं पश्यन् वह्नि पश्यति। तेन भूयो दर्शनेन धूमाग्न्योः स्वाभाविकं सम्बन्धमवधारयति, यत्र धूमस्तत्राग्निरिति"। अर्थात् 'धूम' रूप लिङ्ग का तृतीय ज्ञान, 'परामर्श' शब्द से कहा जाता है। जैसे-प्रथमतः महानस (पाकशाला) में बार-बार धूम को देखता हुआ 'वह्नि' को देखता है। अर्थात् धूम और वह्नि का 'भूयः' अर्थात् अनेक बार सहचारदर्शन होता है। भूयोदर्शन (बार-बार सहचारदर्शन) से 'धूम' और 'वह्नि' के स्वाभाविक सम्बन्ध (व्याप्ति) का निश्चय करता है। अर्थात् जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि (वह्नि) होती है ऐसा समझता है।

यहाँ पर 'लिङ्ग' के तृतीय ज्ञान को 'परामर्श' कहा गया है । यहाँ पर 'तृतीय' शब्द का प्रयोग, पूर्व किये गये 'दो ज्ञानों' को सूचित कर रहा है। क्योंकि 'तृतीय' शब्द 'सापेक्ष' शब्द है प्रथम-द्वितीय ज्ञान को बताये बिना तृतीय ज्ञान का निरूपण करना संभव नहीं है। अतः पहिले प्रथमज्ञान को बताया गया है। वह 'प्रथमज्ञान' व्याप्तिग्रहण की दशा में ही होता है। अतः उपोद्घात के रूप में व्याप्तिग्रहण की प्रक्रिया को बताया गया है। प्रतिपाद्य विषय को अपनी बुद्धि में रखकर उसे प्रकट करने के लिए पहले से तत्सम्बन्धित अर्थान्तर के वर्णन को 'उपोद्घात' कहते हैं।

मख्य लिङ्ग के तीन ज्ञान-

(१) पाकशाला में अग्नि और धूम के भूयो भूयः (बार-बार) सहचार दर्शन से 'वह्निव्याप्यो धूमः'-इस आकार का 'वह्नि' के व्याप्यरूप में 'धूम' का हो ज्ञान होता है, उसे धूम का प्रथम (पहला) ज्ञान समझना चाहिए। अर्थात् जितनी बार के देखने से उस व्याप्ति (स्वाभाविकक सम्बन्ध) का निश्चय होता है, वह सब मिलकर धूम का प्रथम ज्ञान कहा जाता है।

(२) 'लिङ्ग' का प्रथम ज्ञान होने के पश्चात् दूर से 'पर्वत' आदि पर 'धूमरूप' लिङ्ग का जो ज्ञान (दर्शन) होता है, वह द्वितीय ज्ञान है। लिङ्ग के इस द्वितीय ज्ञान से, 'लिङ्ग' के प्रथम ज्ञान द्वारा उत्पन्न किये गये

'व्याप्तिविषयक संस्कार' का उद्बोधन (जागरण) होता है। उस कारण 'धूमो वह्निव्याप्तः' इस आकार में व्याप्तिस्मरण होता है।

(३) 'धूमो वह्निव्याप्यः' इस व्याप्तिस्मरण के अनन्तर 'वह्निव्याप्यधूमवान् अयं पर्वतः' इस आकार में 'पर्वत' के साथ 'वह्निव्याप्यधूम' के सम्बन्ध को जो ज्ञान होता है, उसे 'लिङ्ग (धूम) का तृतीय ज्ञान कहते हैं। इस 'तृतीय ज्ञान' को ही परामर्श कहा गया है। यही अनुमिति की उत्पत्ति में कारण बनता है। अभिप्राय वह है कि 'लिङ्ग' के तीसरे ज्ञान (लिङ्गपरामर्श) का आविर्भाव होने के तत्काल दूसरे क्षण में ही 'अनुमिति' ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है। किन्तु 'तीसरे ज्ञान' (लिङ्ग परामर्श) होने पर अनुमिति ज्ञान की उत्पत्ति होने में कोई 'बाधक' नहीं होना चाहिये।

इसी को स्पष्ट करते हुए तर्कभाषाकार का कथन है-"तदनेन न्यायेन धूमाग्न्योर्व्याप्तौ, गृह्यमाणायां, महानसे यद्धूमज्ञानं तत्प्रथमम्। पर्वतादौ पक्षे यद्धूमज्ञानं तद् द्वितीयम्। ततः पूर्वगृहीतां धूमाग्न्योर्व्याप्तिं स्मृत्वा यत्र धूमस्तत्राग्निरिति तत्रैव पर्वते पुनर्धूमं परामृशति। अस्त्यत्र पर्वते वह्निना व्याप्तो धूम इति। तदिदं धूमज्ञानं तृतीयम्"।

अर्थात् इस प्रकार सहचार दर्शन से 'धूम' और 'अग्नि' की व्याप्ति (स्वाभाविक सम्बन्ध) का ज्ञान प्राप्त करते समय रसोईघर (पाकशाला) में जो 'धूमज्ञान' होता है, वह प्रथम ज्ञान है। अर्थात् धूमरूप हेतु (लिङ्ग) का प्रथम दर्शन है। तदनन्तर 'पर्वत' आदि 'पक्ष' में जो धूम का ज्ञान होता है, वह द्वितीय ज्ञान (धूमरूप हेतु का दूसरी बार का दर्शन) है। तदनन्तर पूर्वनिश्चित धूम और अग्नि की व्याप्ति (जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है-'यत्र-यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः') का स्मरण करके उसी पर्वत में पुनः 'धूम का परामर्श'-इस प्रकार करता है कि "यहाँ पर्वत पर अग्नि से व्याप्त धूम है" अर्थात् "अग्निव्याप्यधूमवानयं पर्वतः" इस आकार में धूम (लिङ्ग) का परामर्श ज्ञान होता है। इसी ज्ञान को 'लिङ्गपरामर्श' या 'अनुमान' कहते हैं। उसी से 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति होती है।